वैश्वीकरण एवं भारतीय संस्कृति

■ डॉ0 आर0के0 सिंह
विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र
डी0बी0एस0 कालेज
कानपुर।

■ डा0 मंजू सिंह
विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र
डी0जी0 पी0जी0 कालेज
कानपुर।

''प्रत्येक संस्कृति को अपनी अन्तर्निहित सर्जनात्मक शक्ति को बंधन से मुक्त करना चाहिए और अपने पृथक्करण से हटकर दूसरी संस्कृतियों के साथ सम्पर्क जोड़ना चाहिए।''

प्रस्तावना

वास्तव में देखा जाये तो वैश्वीकरण कोई नई प्रघटना नहीं है। इसकी जड़ें बहुत लम्बी और गहरी हैं। यह उतनी ही पुरानी है जितनी कि इतिहास। इसकी शुरुआत बड़े–बड़े भू क्षेत्रों में लोगों के देशांतरण के साथ बहुत पहले हो चुकी है। वैश्वीकरण अपने प्रवाह के क्रम में अपना स्वरूप बदलता रहा है। इतिहास की प्रत्येक प्रघटना से वैश्वीकरण का परिष्कृत रूप सामने आता रहा। 18–19वीं सदी का वैश्वीकरण आज के वैश्वीकरण से कई मायने में मिलता–जुलता है। उन दिनों भी दो देशों के बीच सामान, पूँजी और श्रम के आवागमन पर कोई रोक नहीं थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने नया आवेग ही ग्रहण कर लिया जो हमारे सामने हैं। दरअसल, वैश्वीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक लेनदेन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबंधन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था में आया खुलापन आपसी जुड़ाव और परस्पर निर्भरता के फैलाव को वैश्वीकरण कहा जाता है। वैश्वीकरण का सीधा अर्थ विश्व बाजारवाद के आर्थिक नियम और सिद्धान्त।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ में आर्थिक क्षेत्र के दायरे में ही अधिक देखा गया, लेकिन यह विश्व के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समरूपीकरण की धाराओं का ही अभिन्न अंग है। वर्तमान युग में वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संस्कृति का स्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रता से पहुँच रहे हैं। ऐसा लगता है कि इन देशों में सांस्कृतिक बमबारी हो रही है, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद आ रहा है और इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक स्थानीय संस्कृति, रीति–रिवाज और परम्परा नष्ट भ्रष्ट हो रहे हैं, शीघ्रता से एक ''विश्व समाज'' (ळसवइंस ैवबपमजल) बन जायेगा, एक ''अन्तर्राष्ट्रीय बाजार'' (प्दजमतदंजपवदंस डंतामज) बन जायेगा। मानव के जीवन का प्रत्येक क्षेत्र, राज्य, शिक्षा, संस्कृति, कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकों को जब इस वैश्वीकरण से अलग नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान में सांस्कृतिक क्षेत्र में वैश्वीकरण सबसे विनाशक साबित हो रहा है। प्राचीन समय से ही विश्व में हजारों संस्कृतियाँ एक स्वायत्त माहौल में फलती–फूलती रही हैं। ये संस्कृतियाँ अपनी ही मिट्टी में उपजी, पनपी और फली–फूलीं। अन्य संस्कृतियों से भी इनका संवाद रहा। लेकिन इस संवाद का चरित्र जनवादी और सकारात्मक था। वैश्वीकरण के उपरान्त संस्कृतियों के बीच सहज मेल–मिलाप या संवाद नहीं हो रहा है। बल्कि सूचना क्रान्ति के हथियारों से लैस एक ताकतवर प्रभुत्वादी संस्कृति, सांस्कृतिक आक्रमण के जरिये विभिन्न राष्ट्रीय संस्कृतियों का गला घोटने में लगी हुई है। इस आक्रमण में विविध सांस्कृतिक विश्व को समझप बनाने की कोशिशें को साफ देखा जा सकता है। फिर इस प्रसंग में सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि यह संस्कृति एक तरह की अपसंस्कृति है जो सहज रूप से स्वीकार नहीं की जा रही हैं बल्कि थोपी जा रही हैं।

मानव सभ्यता का इतिहास अनेकानेक और विविध संस्कृतियों का संगम रहा है, ये समाज और संस्कृतियाँ हमेशा परिवर्तनशील रही हैं और बदलते माहौल के अनुसार इनमें भी बदलाव आते रहे हैं। लेकिन ये बदलाव अपने स्वभाव से ही सहज, सकारात्मक और स्वस्थ रहे हैं। विभिन्न समाजों और संस्कृतियों के बीच स्वस्थ संवाद और पारस्परिक प्रभाव के बल पर ही मानव सभ्यता की उपलब्धि ायों में सभी किसी न किसी रूप में हिस्सेदार रहे हैं।

इसे मानव सभ्यता का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि ऐसे समय में जब इसने अभूतपूर्व वैज्ञानिक ज्ञान हासिल किया उसी ज्ञान ओर उससे उपजी प्रौद्योगिकियों ने मानव समाजों और संस्कृतियों के सहज और स्वाभाविक विकास में नकारात्मक हस्तक्षेप (जिनका स्वरूप आक्रमणकारी है) से विश्व में एक ऐसी उथल–पुथल पैदा कर दी है कि मनुष्य अपनी मिट्टी और संस्कृति से ही कटता जा रहा है। वैश्वीकरण ने संस्कृति और प्रौद्योगिकी के बीच इस तरह का अमानवीय रिश्ता कायम करने में अहम भूमिका अदा की हैं।

आज यह स्थिति पैदा हो गयी है कि सूचना हथियारों से लेस संस्कृतियाँ इसी शक्ति के बल पर अन्य संस्कृतियों के अस्तित्व

पर खतरे के बादल की तरह मंडरा रही हैं। इसके कारण विश्व के अनेक क्षेत्रों में अनेक तरह की उग्र प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। इसके मूल में अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान खो देने का अंदेशा है।

वैश्वीकरण एवं संस्कृति

हाल के वर्षों में वैश्वीकरण ने 'सांस्कृतिक' आवागमन को सीमाविहीन बना दिया है। इस नए परिदृश्य में विकासशील समाजों की सूचना आवश्यकताओं के क्षेत्र में शून्य ही नहीं बल्कि एक गम्भीर नकारात्मकता पैदा हो गयी है। इस तरह का मीडिया बड़े पैमाने पर सूचना कुपोषण और प्रदूषण को जन्म दे रहा है।

सांस्कृतिक रूप से यह प्रवाह कुल मिलाकर एक तरफा है। बड़े पैमाने पर पश्चिमी देशों से उत्पादों का विकासशील देशों में निर्यात किया जा रहा है। पश्चिम का यह संस्कृतिक प्रवाह इतना तीव्र है कि विश्व भर में अनेक संस्कृतियाँ इसे झेल पाने में अपने आपको असमर्थ पा रही हैं। कुछ वर्ष पहले एक अमरीकी विद्वान ने कहा था कि ''अमेरिका हर दस वर्ष में एक नई संस्कृति पैदा कर रहा है और अगर संस्कृति के उनके मानदण्ड को स्वीकार कर लिया जाए तो शायद अब तो एक संस्कृति के ढहने और दूसरी संस्कृति के उभरने का अंतराल दस वर्ष तो क्या पाँच वर्ष भी नहीं रह गया है।'' पं0 संस्कृति के अपने दुष्प्रभाव को विकासशील देश पर वैश्वीकरण के माध्यम से थोपना चाहती है। इस प्रक्रिया से स्थानीय संस्कृतियों की सृजनशीलता विकृत और नष्ट हो रही हे, और इनका बड़े पैमाने पर पश्चिमीकरण हो रहा है। अनेक संस्कृतियां अपने ही घर में बेघर होती नजर आ रही हैं। औद्योगिक समाज में जहाँ औद्योगिक उत्पादों को आक्रामक विज्ञापनों और मार्केटिंग के बल पर विकासशील देशों के बाजारों में लाया जाता है, आज वही रणनीति कहीं अधिक आसानी तथा कम लागत से मीडिया और अन्य सांस्कृतिक उत्पादों को बेचने और बिकाऊ बनाने के लिए अपनायी जा रही है।

इस तरह विश्व की सांस्कृतिक विविधता नष्ट हो रही है। संस्कृतियों को सृजनशीलता का ह्रास हो रहा है और पश्चिमी संस्कृति अपना आधिपत्य कायम पर रही है, देशों की प्रभुसत्ता का ह्रास हो रहा है और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान धूमिल (उवाल) होती जा रही है।

एक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि परिवर्तनों की गति की वजह से विकासशील देश सूचना युग में भी काफी पीछे हट गए हैं। लेकिन इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि विकासशील देशों के शासक वर्ग ने प्रतिस्पर्धा शुरू होने से पहले ही हार मान ली है। पश्चिमी सांस्कृतिक परिवर्तनों की गति चाहे कितनी भी तेज क्यों न रही हो, इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि पूरे समाजों की सृजनशीलता पर अचानक ही ताले पड़ गए हों जो वह कोई वैकल्पिक मीडिया ओर सांस्कृतिक धारा पैदा नहीं कर पाईं। हर समाज में इसकी जरूरतों के मुताबिक सृजनशीलता होती है जो इसके यथार्थ से उपजी होने के कारण इसे सबसे प्रभावशाली रूप से प्रतिबिम्बित कर सकती है। इस अर्थ में इस प्रतियोगिता में हार–जीत की बेमानी भी किया जा सकता था। हर समाज कुछ विदेशी उत्पादों के साथ–साथ अपने वैकल्पिक सांस्कृतिक उत्पाद भी सृजित कर सकता था। लेकिन विकासशील देशों के शासक वर्ग की औपनिवेशिक मानसिकता, उसके व्यापक भ्रष्टाचार और पश्चिमी मूल्यों के प्रति इसके मोह से ऐसा नहीं हो पाया। शासक वर्ग अपनी ही सत्ता को कमजोर कर रहे हैं। ताकत देने के लिए बड़ी चुनौती का सामना करने के बजाए उन्होंने स्वयं अपने ही समाज में संकीर्ण सामाजिक टकरावों को भड़काया। भारत के अंग्रेजी भाषी सांस्कृतिक अल्पसंख्यक वर्ग ने तो देश की समृद्ध संस्कृतियों और सृजनशीलता को नुकसान पहुँचाने में कभी कसर नहीं छोड़ी। वैश्वीकरण के उपरान्त उभरे परिदृश्य में इस शासक वर्ग ने विकल्प के बजाए विदेशी सांस्कृतिक धारा का अंग बनना ही बेहतर समझा है।

भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश का भी टेलीविजन माध्यम को स्वदेशी संस्कृति के प्रति उन्मुख न बनाना एक आश्चर्य की बात है। आज इस देश की सृजनशीलता पश्चिमी सांस्कृतिक मंचों पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है तो स्वदेशी मंच पर इसकी इस तरह की अनुपस्थिति के लिए अल्पसंख्यक शासक वर्ग को ही दोषी ठहराया जा सकता है।

वैश्वीय संस्कृति : पश्चिमी संस्कृति है

आधुनिकता ने दुनिया भर की संस्कृतियों को मिश्रित करने का प्रयास किया है। फिर इस मिश्रण में पश्चिमी संस्कृतियों की प्रधानता होती है। ऐसी अवस्था में जब यह वैश्वीय संस्कृति, स्थानीय संस्कृति के सम्पर्क में आती हैं तब वैश्वीय संस्कृति को वैधता पाने के लिए स्थानीय संस्कृति के साथ अनुकूलन अवश्य करना पड़ता है। अर्थात् पश्चिमी संस्कृति हिन्दू धर्म के पंडित, इस्लाम के उम्मा (न्डड।) को नजर अंदाज नहीं कर सकती। सांस्कृतिक वैश्वीकरण के संदर्भ में मुख्य मुद्दा वैश्वीय स्थानीय संस्कृति के संबंधों का है। वैश्विक संस्कृतिक बहुलवादी संस्कृति है।

केवीन रोबिन्स कहते हैं कि वैश्विकता और स्थानीयता की अन्तःक्रिया में जहाँ वैश्वीकरण से संस्कृति के बहुत से पहलू समृद्ध होते है वहीं इस अन्तःक्रिया के कारण स्थानीयता ताकतवर बनती है। कभी–कभी स्थानीयता कमजोर भी हो सकती है, क्योंकि स्थानीय संस्कृति को अपने अस्तित्व का हमेशा खतरा रहता है।

वैश्वीय स्थानीय सम्पर्क चाहे मीडिया के माध्यम से हो या बाजार के माध्यम से हो, खतरनाक भी है। कुछ आलोचकों का कहना है कि कभी–कभी वैश्वीय संस्कृति और बाजार इतने शक्तिशाली होते हैं कि स्थानीयता को समाप्त कर देते हैं। ऐसा भी देखा जाता है कि इस अन्तःक्रिया के परिणाम स्वरूप स्थानीय भाषा, पर्व–त्यौहार, रीति रिवाज ओझल हो जाते हैं। कुछ नये सांस्कृतिक प्रतिमान, जिनका उदय दूसरे देशों में होता है स्थानीय स्तर पर प्रभुत्वशाली हो जाते हैं। कहीं–कहीं तो एक देश में राज्यों की स्थानीयता, दूसरे राज्यों पर हावी हो जाती है। जैसे बिहार का छठ पर्व, धीरे–धीरे उत्तर प्रदेश दिल्ली या अन्य राज्यों में फैलता जा रहा है। यही हाल करवा चौथ का है। वैश्वीय और स्थानीय संबंधों का यह मुद्दा बहुत ही संवेदनशील है। एक ओर वैश्वीय संस्कृति होती है। उदाहरण के लिए पश्चिमी संगीत नृत्य और पहनावा, दूसरी ओर देशीय संगीत, पहनावा तथा नृत्य बाजार या मीडिया के माध्यम से सम्पर्क में आते हैं। यह तनाव भी पैदा करता है। तनाव के कारण इसके खिलाफ आंदोलन भी उठने लगे हैं।

आधुनिक युग में मुख्य रूप से दो प्रकार की संस्कृतियां विद्यमान हैं। एक ओर है विकसित देशों की संस्कृति तो दूसरी ओर हैं विकासशील देशों की संस्कृति। प्रायः इण्टरनेट से जुड़े विकासशील देशों के नवधनाढ्य लोगों के मन में अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति हीन भावना है। उसके अनुसार आधुनिकता यूरोपीय संस्कृति का पर्याय है। अपने देश में यह प्रवृत्ति कुछ अधिक तीव्रता से घर कर गयी है। यही कारण है कि इस दौर में पश्चिमी संस्कृति का वर्चस्व हरेक क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषा, संस्कृति, जीवन शैली, जीवन मूल्य सब जगह अपनी प्राचीन संस्कृति से कटता जा रहा है। उपभोक्तावाद की लहर ने मनुष्य को इतना अधिक स्वकेन्द्रित बना दिया है कि पर (दूसरों के लिए) के लिए सोचने की न इच्छा है, न समय। 'अर्थ' इतना अधिक प्रधान हो गया है कि उसके साधान शुभ हैं या अशुभ इससे किसी को कुछ लेना देना नहीं है। यही कारण है भ्रष्टाचार जीवन पद्धति बन गया है। प्रतिस्पर्धा तथा प्रतियोगिता की भावना ने मन में हिंसा के बीच बो दिए हैं इसीलिए आतंकवाद तथा अपराध बढ़ रहे हैं। मानवीयता का नितांत अभाव है। आधुनिकता की अच्छाईयों से जुड़े रहकर ही जीवन का उद्देश्य वांछनीय शांति प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। इस प्रक्रिया में आधुनिक हो या प्राचीन दोनों के दोषों को त्यागना ही होगा। समन्वित दृष्टिकोण विकसित करना होगा। अति दोनों ही स्थितियों में अश्रेयस्कर होगी। अतिआधुनिकतावाद का मानना हे कि परिवर्तन अनिवार्य है, देशकाल के अनुसार, अपने को बदलना चाहिए। दूसरी ओर अतिपुरातनवादी या कहें परम्परावादी कहते हैं कि अतीत ही श्रेष्ठ था, गौरवशाली था किसी भी नए परिवर्तन को वे विद्रोह से जोड़कर देते हैं। सुविधानुसार उपभोक्तवाद को स्वीकार भी कर लिये हैं।

वैश्वीकरण के दौर में हमें ऐसी विश्वव्यापी संस्कृति की तलाश करनी है तथा विकास करना है जो यथार्थ में अन्तर्राष्ट्रीय भी हो और मानवीय भी जिसमें छोटे–बड़े विकासशील और विकसित सभी का योगदान हो।

वैश्वीकरण : भारतीय संस्कृति

हमारे देश में सांस्कृतिक वैश्वीकरण के खिलाफ आर्थिक वैश्वीकरण की तुलना में बड़ा हल्ला हो रहा है। संकट यह है कि यदि इसी गति से मीडिया ने विदेशी संस्कृति को यहाँ फैलाया तो हमारी पहचान समाप्त हो जायेगी। वस्तुतः यह संकट पहचान का है। पोप संगीत के सामने हमारे शास्त्रीय संगीत का क्या होगा? वेस्टर्न डान्स की तुलना में हमारे भरत नाट्यम और ओडिसी नृत्य जिसके वर्षों की साधना होती है में कहाँ खड़े होंगे। आज प्रेमचन्द, अज्ञेय, धर्मवीर भारती या फणीश्वरनाथ रेणु को कौन पढ़ेगा। ये लेखन वेस्टर्न फैशन बोलोम, डिबोनियर तथा फैंटेसी के सामने क्या टिक पायेंगे? अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि आज वैश्वीकरण के दौर में सब कुछ बदल रहा है। लोगों की रूचियां बदल रही हैं तथा सोचने के तरीके भी। यही कारण है कि अब वैसी पुस्तकें खूब नहीं बिकती जो ''भारी–भरकम'' विद्वान बनाने में सहायक हों। आज पाठकों की मांग वह है जो लीक से हटकर हो– नई संवेदना, नई भाषा से लैस हो। इसी कारण पश्चिमी साहित्य का प्रभाव हमारे जनमानस में छाने लगा है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण की दौड़ में हमारी कई विधाएँ अपनी पहचान खो चुकी हैं। छत्तीसगढ़ की पंडवानी, बिहार की नौटंकी, विन्ध्य प्रदेश का आल्हा ऊदल आदि समाप्ति के कगार पर खड़े हैं। ऐसा लगता है कि यदि सांस्कृतिक वैश्वीकरण इसी तरह अपना पैर फैलाता रहा तो हमारी सांस्कृतिक विरासत देखते ही देखते, हमारे हाथों से किसी साबुन की तरह फिसल जायेगी, हम देखते ही रह जायेंगे।

हमारे समाज में नारी का स्थान मर्यादायुक्त और आदर्शात्मक है। शास्त्रों में कहा गया है कि – ''केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं, अर्थात् वह अपूर्ण और अधूरा हैं किन्तु स्त्री, स्नेह तथा संतान तीनों से मिलकर ही 'पुरुष' (पूर्ण) होता है। इस प्रकार स्त्री पुरुष की शरीरार्द्ध और अर्द्धांगिनी मानी गयी तथा श्री व लक्ष्मी के रूप में मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति दहने वाली और पूजित मानी गयी। लेकिन अब इसमें परिवर्तन आया है–आज की आधुनिक महिलायें घर के अंदर नहीं रहना चाहती, वह पश्चिमी की महिला की तरह स्वच्छंद होना चाहती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य को त्यागकर कास्मेटिक सुन्दरता व अर्द्धनग्नता को अपनाना चाहती हैं, खासकर हमारी शिक्षित बहनों पर पश्चिमी संस्कृति का जादू तेजी से चढ़ रहा है। काश हमारी माँ–बहने पश्चिम में जो चीजें अच्छी

हैं उनको ग्रहण करती। संस्कृति में आदान–प्रदान होते ही रहता है। कुल मिलाकर वैश्वीकरण एक नई संस्कृति के विकास का माध्यम बना है परन्तु उसकी गतिशीलता परस्पर विरोधी हैं।

पश्चिमी संस्कृति ने हमारे पारम्परिक पहनावे पर भी हमला किया है। आज की स्त्रियों की नई पीढ़ी, जमकर नाईट–क्लब में जाती है, धूम्रपान और मद्यपान करती हैं, मिनी स्कर्ट पहनती हैं, जिन्स को अपनी पसंदगी पोशाक समझती हैं। कल तक प्राकृतिक सौन्दर्य से ही परिपूर्ण रहने वाली हमारी माँ–बहने लिपिस्टिक, पाउडर, क्रीम और श्रृंगारदान के बिना आत्म–व्यथा और सामाजिक लज्जा का अनुभव करने लगी हैं। यह सब सामाजिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण का ही परिणाम है। सच तो यह है कि हमारा सरल प्राकृतिक जीवन अप्राकृतिक आडम्बरों में बदलता जा रहा है।

वैश्वीकरण ने हमारे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में नये मूल्य प्रस्तुत किए हैं। बाजार से लेकर मन्दिर, चर्च, सभी जगह संस्कृति की धूम मच गयी है। नित्य नये नये चमत्कार देखने को मिलते हैं। ऐसे ही नये नये देवताओं का अवतार भी हो रहा है जो त्यौहार या पर्व लुप्त हो गये थे, अब नये रूप रंग में आ गये हैं– वेलेन्टाइन डे तथा फ्रेन्डशिप डे धूम–धाम से मनाये जाने लगे हैं।

फैशन में मूल्य या नैतिकता नहीं होती, वर्तमान समय में फैशन बाजार में बिकाऊ है। नया–नया फैशन देखने को मिल रहा है, युवाओं में मॉडर्न कहलाने का भूत सवार हो गया है। सम्भ्रान्त वर्ग का रहन सहन जो पहले था वो बदलने लगा है, उनकी आवश्यकता के अनुसार हमारी अर्थव्यवस्था में उत्पादन भी शुरू हो गया है। सम्भ्रान्त वर्ग के मकान में जो पहले सादगी होती थी, अब उसकी जगह तड़क–भड़क और फ्लैट ने ले लिया है।

अभी कुछ साल पहले फिल्म ने हमारी संस्कृति, सामाजिक समस्याओं तथा ज्ञानवर्द्धन के रूप में अपनी पहचान बनायी थी, आज इसकी जगह मार–धाड़ और एक्शन पर जोर दिया जाने लगा है। फिल्मी संगीत, पोप कल्चर के बिना अधूरा लगने लगा है। अब फिल्मों में कामुकता तथा अश्लीलता की भरमार रहती है। इसके साथ ही हमारे सामाजिक मूल्य में बदलाव स्पष्ट दिखने लगाक है। यौन संबंध की सौख चर्चा का विषय बन गया है। 19–20 शताब्दी तक यौन संबंध परिवार और वैवाहिक जीवन तक सीमित था, धर्म और नैतिकता के आधार पर ''यौन संबंध'' के बारे में विचार–विमर्श भी गलत समझा जाता था। वर्तमान समय में सबसे अधिक चर्चा का विषय बन गया है। समाज में यौन शिक्षा ेंमग म्कनबंजपवद) भी दी जाने लगी है। पहले यौन समस्याओं का निदान पुरोहितों तथा बुजुर्गों की सलाह से किया जाता था, आज पारिवारिक सलाहकार रखे जाने लगे हैं।

''कामुकता'' जो वस्तुतः एक आनन्द होता था जिसमें 'कला' और सौन्दर्य की अनुभूति होती थी। (खजुराहो के मंदिर की कला–कृतियाँ कामुकता न होकर कला की अभिव्यक्ति हैं) वर्तमान समय में कामुकता को 'प्यार' से परिभाषित किया जाने लगा है। जो भोग विलास की वस्तु समझा जा रहा है। वर्तमान समय में कला संस्कृतियों के अर्थ मायने उलट पलट गये हैं।

'विवाह' जो पहले सर्वव्यापी तथा सार्वभौम संस्था थी। सभी (आदिम, सभ्य, असभ्य) समाज में यह संस्था मौजूद थी। यह संस्था न केवल यौन संतुष्टि ही नहीं बल्कि वंश, कुल परिवार की अभिव्यक्ति थी, जिसका धार्मिक और सामाजिक आधार भी था। आज इसका कोई महत्व नहीं रह गया या यह कहूँ कि यह संस्था अप्रासांगिक हो चुकी है। आज विवाद का मतलब यौन संबंध तािा कामुकता मात्र बनकर रह गया है। एक समय था, विवाह सबके लिए जरूरी था। आज यह खौफ जनक व्यवस्था बन गयी है। नवयुवक विवाह करना पसंद नहीं करते, न ही आवश्यक समझते हैं। आज बिना विवाह किए लड़के–लड़कियां एक साथ रहने लगे हैं। नई आधुनिक लड़कियां माँ–बहन कहलाना पसंद नहीं करती, उन्हें इस शब्द से घृणा होने लगी है। भ्रूण हत्या तथा गर्भपात करना आम बात सी हो गयी है।

जब औद्योगीकरण अधिक तीव्र नहीं था, सामान्यतया लोग मुख्य रूप से खेती बाड़ी करते थे, परिवार एक मुख्य आर्थिक इकाई थी जिसका जुड़ाव उत्पादन से था। अब वैश्वीकरण से प्रभावित होकर संयुक्त परिवार टूटने लगा, एकल परिवार की माँग बढ़ती जा रही है। अब परिवार के वयस्क जवान परिवार पर निर्भर नहीं रहते हैं, स्वावलम्बी बन गये हैं। परिवार के मुखिया का प्रभाव जो परम्परागत शक्ति थी, कमजोर हो गयी है। परिवार में एक साथ भोजन करना पूजा पाठ करना बदल गए हैं, मनोरंजन की गतिविधियां भी अब घर से निकलकर अन्यत्र होने लगी हैं। अब घर का स्थान क्लब ने ले लिया है। यह सब वैश्वीय संस्कृति और स्थानीय संस्कृति की अन्तःक्रिया का परिणाम है।

कुछ हद तक यह सब ठीक है। बुनियादी रूप से कोई भी सांस्कृतिक आइटम सबसे ऊँचा है, कभी नहीं कहा जा सकता है। संस्कृति तो संस्कृति हैं लेकिन संस्कृति के सापेक्षिक भी होती हैं। भारतीय संदर्भ में परेशानी यह है कि हमारी संस्कृति की एक विशिष्ट पहचान है। यह पहचान सभ्यता की पहचान, हमारे इतिहास की पहचान है। यह हमसे छूट जायेगी, तो विश्व समुदाय में हमें अलग से कौन पहचानेगा। इसी कारण हम कहते हैं कि सांस्कृतिक वैश्वीकरण का बहुत बड़ा संकट पहचान का है। यह पहचान राष्ट्र

की पहचान है। एक जाति की पहचान है। भारत में मूल्यों, संस्थाओं और विचारधाराओं में तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है। वास्तव में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हमारे सामने कई चुनौतियां खड़ी की हैं। भारतीय जीवन के कई सांस्कृतिक पहलुओं को झकझोर दिया है। इसने हमारी जीवन पद्धति को बदल दिया है। उपभोग के प्रतिमान में उलट–फेर कर दिया है। सांस्कृतिक उत्पादन को बाजार के माध्यम से बदल दिया गया है तो धार्मिक व्यवहार में परिवर्तन ला दिया है। अब एक नये पापुलर कल्चर (चवचनसंत ब्नसजनतम) का विकास हो गया है।

निष्कर्ष :

वैश्वीकरण का सांस्कृतिक प्रभाव होता है। वास्तव में वैश्वीकरण स्थानीयता के साथ जुड़ा होता है। जब इस प्रक्रिया द्वारा आधुनिकीकरण और उत्तर आधुनिकीकरण की अन्तः क्रिया स्थानीय संस्कृति के साथ होती है तब पहचान की समस्या सामने आती है। भारत ही नहीं, सभी देशों में वैश्वीकरण का मुकाबला स्थानीयकरण के साथ होता रहा है। अमेरिका में भी ऐसा होता है, भारत में भी। हमारी समस्या कुछ और हैं संविधान के माध्यम से हमारे यहाँ सभी जातियों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों के विशेषाधिकार परिभाषित किये गये हैं। हमने कमजोर वर्गों के विकास और बचाव की संवैधानिक सुरक्षाएँ दी हैं। लेकिन वैश्वीकरण एक शक्तिशाली प्रक्रिया की तरह सभी को अपनी चपेट में ले लेता है। तब अनिवार्य रूप से प्रत्येक समूह से पहचान का सवाल आता है।

यह सही है कि बाजार अर्थव्यवस्था, मीडिया की शक्ति तथा सूचना तकनीकी तंत्र ने स्थानीय संस्कृति के सामने पहचान की बहुत बड़ी समस्या पैदा कर दी है। सजातीयता की यह भीमकाय प्रक्रिया यदि बराबर चलती रही तो स्थानीय तथा राष्ट्रीय पहचान का क्या भविष्य होगा?

वैश्वीकरण केवल व्यापार, बाजार और मीडिया ही नहीं है। इसके अन्तर्गत प्रजातंत्र और पूँजीवाद भी है। जब ये सब प्रक्रियाएँ जमीनी स्तर पर पहुँचती हैं तो लोगों को लगता है कि इन सब आधुनिक संस्थाओं के साथ उसका मोह भंग (कपेमदबींदजउमदज) हो गया है। प्रश्न उठ रहा है कि क्या ''ग्लोबल कैपिटलिज्म'' अपने इसी रूप रंग में विश्व मानवता का मॉडल बन सकता है? जार्ज सरोज ने अपनी पुस्तक 'दि क्राइसिस ऑफ ग्लोबल कैपिटलिज्म' में वैश्वीकरण की तुलना 'दि क्राइसिस ऑफ ग्लोबल ट्रेजेडी' से की है जिसमें इस त्रासदी से संस्कृति, पहचान, परिवार आदि बच नहीं सकता।'' इस त्रासदी का मूल कारण वर्तमान वैश्वीकरण में न्याय समानता व व्यापक मानव सहानुभूति का नितांत अभाव है।

राष्ट्रीय सीमाएँ ओझल हो रही हैं लेकिन यह सब किसके लिए? इसका उत्तर बहुत ही स्पष्ट है। वैश्वीकरण के लाभ और बहुत अधिक लाभ विकसित देशों और संभ्रान्त लोगों की झोली में गए हैं। आम आदमी ठगे–ठगे और बिखरे दिखाई देते हैं।

यही कारण है कि जब सांस्कृतिक आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण के माध्यम से स्थानीय लोगों की संस्कृति पर आघात करता है, उसे चोट पहुँचाता है, उसकी धर्म, भाषा, जीवन पद्धति और संस्कृति मूल्यों पर हमला करता है तो लोग तिलमिला उठते हैं। इस देश में हमेशा ऐसा होता रहा है कि विविधता ने इसे बाँधे रखा है। इस वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने स्थानीयता को तोड़ने की अपेक्षा सुदृढ़ किया है।

भारत के लोगों की सबसे महत्वपूर्ण खोज यह है कि पिछले एक दशक में क्षेत्रीयता की भावना बहुत अधिक सुदृढ़ हुई है। इससे ऐसा लगता है कि जितना अधिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण व्यापक होगा उतनी ही अधिक क्षेत्रीयता की भावना मजबूत होगी। ऐसी अवस्था में हमारे देश में शायद ही स्थानीय संस्कृति को वैश्वीकरण से कोई खतरा हो।

संदर्भ

1. पाण्डेय राम नरेश : ''विश्व व्यापार संगठन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था'' एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004, दिल्ली।
2. द्विवेदी, सरोज कुमार : ''वैश्वीकरण : चुनौतियां और अवसर'' 2003, इण्डियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
3. अमीन समीन : ''भूमण्डलीकरण के युग में पूँजीवाद'' अनुवादक (राम कवीन्द्र सिंह) ग्रंथ शिल्पी।
4. Raj Kumar Pruthi : Globalization and inequality" Alfa Publications, New Delhi 2006.
5. Pruthi Raj Kumar : Globalization and Development" Alfa Publications, New Delhi 2008.